Swar Sindhu: National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music
ISSN 2320–7175 | Volume 09, Issue 02, July-December 2021
http://swarsindhu-pratibha-spandan-org
© The Author(s) 2021
A UGC CARE listed Journal

बाँसुरी वादन शैली एवं ध्रुपद गायन शैली का अन्तः संबंध

SHRI SATISH KUMAR[1]& PROF. RAJESH SHAH[2]

1. Assistant Professor, Dept. of Instrumental Music, Faculty of Performing Arts, Banaras Hindu University, Varanasi (U.P.)

2. Professor, Dept. of Instrumental Music, Faculty of Performing Arts, Banaras Hindu University, Varanasi (U.P.)

शोध सार

बाँसुरी संगीत जगत का सबसे प्राचीन वाद्य है, बाँसुरी को श्रीकृष्ण की सहचरी की संज्ञा दी गयी है। कहा जाता है कि उनके वादन में नाद रूपी ब्रह्म का प्रादुर्भाव होता था जिसके कारण जड़ से चेतन तक उस मधुर स्वरलिपियों से आनन्दभूषित हो जाता था। इस बाँसुरी के स्वरों में ऐसा जादू था की सुखे पेड़ भी हरे-भरे हो जाते थे। बाँसुरी का वर्णन पुराणों-महापुराणों, काव्यों-महाकाव्यों एवं प्राचीन ग्रंथों में अनेकों प्रकार से की गई है। मध्यकाल में बाँसुरी मात्रा संगत वाद्य के रूप में प्रयोग होता था साथ ही ध्रुपद गायन शैली का विकास भी मध्यकाल में हुआ। ध्रुपद के विकास के साथ-साथ वीणा, वंशी आदि वाद्यों के वादन शैलियों का विकास हुआ होगा। अतः प्रस्तुत शोध पत्र इस बात को प्रतिष्ठापित करता है कि बाँसुरी वादन शैली पर ध्रुरुपद का प्रभाव मूलरूप से पड़ा, तब जाकर उसकों धीरे-धीरे शास्त्रीय संगीत के लिए उपयुक्त समझा जाने लगा और बाद में स्वतन्त्रा वादन के लिए प्रतिष्ठित हुआ। यह शोध पत्र गुणात्मक शोध पद्धति पर आधारित है।

शोध का उद्देश्य- प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य यह जानना है कि बाँसुरी वादन शैली एवं ध्रुपद गायन शैली में अन्तःसम्बन्ध क्या है? यह शोध यह जानने का प्रयास करता है कि वादन शैली का विकास किस प्रकार हुआ तथा इसके साथ ही यह ध्रुपद गायन में किस प्रकार से प्रयोग किया गया।

शोध प्रविधि-यह शोध गुणात्मक शोध पद्धति पर आधारित है।

बीज शब्दः बाँसुरी वादन शैली, ध्रुपद गायन शैली, गतकारी शैली।

भूमिका

मनुष्य में बौद्धिक स्तर, संवेदनशीलता और रूचिभेद के कारण अनेक कलाकृतियों की रचना हुई है तथा उसमें नये-नये प्रयोगों से आनन्दानुभूति के स्तर में भी परिवर्तन आता रहा है। भारतीय संगीत के प्राचीन आचार्यों ने ऐसे परिवर्तनशील संगीत को 'देशी' संगीत की संज्ञा दी है।

भारत की कलाएँ जीवन के साथ-साथ अभिन्न रूप से जुड़ी रही है, इसलिए जीवन में आये परिवर्तनों के साथ-साथ उनमें भी परिवर्तन हुए हैं विशालता और सूक्ष्मता के प्रति विशेष दृष्टिकोण से विशाल मन्दिरों, भित्तिचित्रों, नाटकों, काव्यों, महाकाव्यों एवं गीत प्रबन्धों की रचना हुई। किन्तु लघुता एवं संक्षिप्तता के प्रति आकर्षण के कारण भी छोटी शिल्पाकृतियों, छोटे चित्रों, खण्ड काव्यों, पदों एवं छोटे गीतों की रचना हुई। कला युग के अनुसार अपना स्थान धारण करती रहती है और मानव जीवन के कलात्मक आवश्यकताओं को पूर्ति करती है। मानव रूचि के बदलते स्वरूपों के साथ कला में परिवर्तन भी आवश्यक है और रूचि निर्माण का प्रयत्न भी जरूरी है प्राचीन कलाओं ने सूक्ष्म अभिव्यंजना

के माध्यम से रूचि निर्माण की और अपने विभित्र कलाकृतियों के द्वारा जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करता रहा है। इसलिए प्राचीन कलाकृतियाँ अमर है(जायसवाल, 1972, पृ0 5)।

मध्यकाल में सुषिर वाद्य ’वंशी’ का व्यापक प्रचलन था। भारतीय बाँसुरी भारत ही नहीं बल्कि विदेशियों को भी बहुत लुभाती थी यही कारण था कि जब ’सिकन्दर’ भारत की ओर प्रस्थान कर रहा था तब उसके गुरू महान दार्शनिक ’सुकरात’ ने उससे तीन वस्तुएँ लाने को कहा था, जिसमें एक वस्तु बाँसुरी भी थी(जायसवाल, 1972, पृ0 6)।

मध्यकाल के लगभग सभी संगीत ग्रन्थों में ’बाँसुरी’ की चर्चा की गई है। विशेषकर शारंगदेव कृत संगीतरत्नाकर जो मध्यकाल तेरहवीं शताब्दी का प्रमुख ग्रंथ है, जिसमें शारंगदेव ने बाँसुरी के आकार-प्रकार एवं बजाने के विधि का विस्तृत चर्चा की है। तथा वंशी पर बजाये जाने वाले 32 देशी रागों का निरूपण भी किया है। शारंगदेव के अनुसार वंशी हाथी दाँत, सफेद चंदन, लाल चन्दन, लोहा, काँसा, चाँदी, स्वर्ण तथा खैर की लकड़ी से निर्मित होना चाहिए। और इसके दण्ड की लम्बाई सरल, चिकना तथा गाँठ से मुक्त होना चाहिए उसके मुख्य शीर्ष पर कनिष्ठा अंगुली के विस्तार का छिद्र होना चाहिए एवं शिर स्थल से दो, तीन, या चार अंगुली के अन्तर पर एक अँगुली के परिमाण का मुखरन्ध्र होना चाहिए। मुखरन्ध्र से एक अंगुली की दूरी पर तारन्ध्र एवं उसके पश्चात् आधे-आधे अंगुल के अंतर पर अन्य सात स्वररन्ध्र होना चाहिए। ताररन्ध को जोड़कर कुल इन आठ स्वररन्ध्रों में से प्रत्येक की परिधि का परिमाण बैर के बीज के बराबर होना चाहिए। इनमें से प्रथम सात छिद्रों को वायु निर्गमन के लिए उपयोग किया जाता था। मुखरन्ध्र में फूंक द्वारा हवा भरी जाती थी।

वंशी के मुखरन्ध्र तथा ताररन्ध्र के अन्तर में एक-एक अंगुली के वृद्धि से चौदह प्रकार की वंशी होती थी (भार्गव, 2009, पृ0 106-107)। शारंगदेव ने चौदह प्रकार की वंशी एवं विभिन्न वंशी की माप आदि का विवरण भी बताया है-

- **एकवीर-** इस वंशी का दण्ड चौदह अंगुल लम्बा होता था जिसका शिर भाग दो अंगुल का होता था। शिर भाग के एक अंगुल के अन्तर पर मुखन्ध्र होता था। उसके नीचे तारन्ध्र साहित आठ अन्य रन्ध्र होते थे, जिसमें प्रथम सात रन्ध्रों का उपयोग स्वरों के वादन के लिये होता था एवं आठवां अन्तिम रन्ध्र वायुनिर्गमन के लिए होता था।
- ’**उमापति**’ इस वंशी का दण्डमान पन्द्रह अंगुल लम्बी होती थी तथा उसके अन्य लक्षण ’एकवीर’ वंशी के समान थे। वे दोनों रन्ध्रों में दो अंगुल का अन्तर होने पर ’उमापति’ नामक वंशी होती थी।
- **त्रिपुरूष-** यह वंशी साढ़े सोलह अंगुल लम्बी होती थी और स्वर रन्ध्र साढ़े तीन यव के अन्तर पर स्थित रहता था एवं उभय रन्ध्रों मे तीन अंगुल का अन्तर होने पर ’त्रिपुरूष‘ वंशी होती थी।
- **चतुर्मुख-** इस वंशी का दण्डमान साढे अठ्ठारह अंगुल होता था तथा उसके प्रत्येक स्वररन्ध्र का अन्तराल सवा चार यव का होता था। अर्थात चार अंगुल का अन्तर होने पर ’चतुर्मुख’ वंशी होती थी।
- **पंचवक्त्र-** यह वंशी दो यव अधिक बीस अंगुल लम्बी होती थी तथा उसके प्रत्येक स्वर-रन्ध्रों में पाँच यव का अन्तर होता था। अर्थात पाँच अंगुल का अन्तर होने पर पंचवक्त्र वंशी होती थी।

- **षण्मुख-** इस वंशी की दण्ड की लम्बाई ढ़ाई यव से अधिक बाईस अंगुल लम्बी होती थी तथा उसके मुखरन्ध्र से स्वररन्ध्र में साढ़े पाँच यव का अन्तराल होता था परन्तु मुखरन्ध्र से स्वररन्ध्र में छः अंगुल का अन्तर होने पर षण्मुख वंशी होती थी।
- **मुनि** - यह वंशी डेढ़ यव अधिक तेईस अंगुल लम्बी होती थी। जिसके प्रत्येक स्वरन्ध्र का अन्तराल एक अंगुल होता था और मुखरन्ध्र सेताररन्ध्र में सात अंगुल का अन्तर होने पर मुनि वंशी कहलाती थी।
- **वसु-** यह वंशी चार यव अधिक पच्चीस अंगुल लम्बी होती थी तथा उसके स्वर रन्ध्रों में सात यव का अन्तराल होता था। अतः मुखररन्ध्र से तारन्ध्र में आठ अंगुल का अन्तर होने पर वसु वंशी कहलाती थी।
- **नाथेन्द्र-** इस वंशी की दण्ड की लम्बाई सवा सताईस अंगुल लम्बी होती थी और उसके प्रत्येक स्वररन्ध्र का अन्तराल सवा अंगुल होता था। और मुखरन्ध्र से ताररन्ध्र में नौ अंगुल का अन्तर होने पर, नाथेन्द्र वंशी कहलाती थी।
- **महानन्द-** इस वंशी की दण्ड का लम्बाई तीस अंगुल लम्बी होती थी जिसके प्रत्येक स्वरन्ध्र का अन्तराल डेढ़ अंगुल होता था। और मुखन्ध्र से ताररन्ध्र में दस अंगुल का अन्तर होने पर महानन्द वंशी कहलाती थी।
- **रूद्र-** इस वंशी की दण्ड का लम्बाई सवा तैंतीस अंगुल लम्बी होती थी और उसके प्रत्येक स्वर रन्ध्र में पौने दो अंगुल का अन्तराल रहता था। तथा उसके मुखरन्ध्र से तार रन्ध्र में ग्यारह अंगुल का अन्तर होने पर रूद्र वंशी कहलाती थी।
- **आदित्य** - इस वंशी की दण्ड का लम्बाई पैंतीस अंगुल लम्बी होती थी और उसके प्रत्येक स्वर रन्ध्र में पौने दो अंगुल का अन्तर होता था। तथा मुखरन्ध्र से तार रन्ध्र में बारह अंगुल का अन्तर होने पर आदित्य वंशी कहलाती थी।
- **मनु** - इस वंशी की दण्ड का लम्बाई पौने इकतालीस अंगुल लम्बी होती थी जिसका शीर्ष स्थान ढाई अंगुल से पृथक होता था। उसके प्रत्येक स्वर रन्ध्र का अन्तराल सवा दो अंगुल होता था। एवं मुख रन्ध्र से चौदह अंगुल का अन्तर होने पर ’मनु’ वंशी होती थी।
- **मुरली** - इस वंशी के मुख रन्ध्र तथा तार रन्ध्र का अन्तराल बीस अंगुल का तथा बाइस अंगुल का अन्तर होने पर ’श्रुतिनिधि’नामक वंशी होती थी।

नोटः-तेरह, पन्द्रह तथा सोलह अंगुल का अन्तर वाली वंशी की ध्वनि स्पष्ट नहीं होती थी(जायसवाल, 2013, पृ0 77-71)।

शारंगदेव ने अन्य मतों के अनुसार भी उपरोक्त प्रकार से वंशी के दण्डमान आदि का वर्णन किया है। कुशल वंशीवादक के गुण-दोष पर भी विचार किया गया है। साथ ही ‘वांशिक वृन्द’ के सम्बन्ध में भी बताया है। इससे यह पता चलता है कि उस समय के संगीत में वांशिक वृन्द बहुत लोकप्रिय था।

भरत के नाट्यशास्त्र में भी वंशी का वर्णन प्राप्त होता है, किन्तु वादन शैली के विषय में स्पष्टरूप से उल्लेख नहीं किया गया है कि वंशी या वीणा को मात्रा संगत वाद्य अर्थात वर्तमान तानपुरें के समान स्वरों के भराव के लिये उपयोग करते थे या फिर प्राचीनकाल में प्रचलित गायन शैली ‘प्रबन्ध’ गायकी का अनुशरण करते थे। भरतकाल में ‘ध्रुवा’ गीत का प्रचलन था एवं मतंग के समय में प्रबन्ध गीत शैली पूर्ण रूप से अस्तित्व में आ चुकी थी। और इन्हीं प्राचीन गायन शैली के संयोग से अन्य गायन शैलियों का विकास हुआ। प्रबन्ध से ध्रुपद, ध्रुपद से ख्याल आदि गायन शैलियों का विकास मध्यकाल में प्रारम्भ हो गयी थी। कुछ विद्वानों का मानना है की भरतकालीन ‘ध्रुवागीत’ में आवश्यक परिवर्तन के साथ मध्यकालीन ध्रुपदों का विकास हुआ(बृहस्पति, 1986, पृ0 211)।

ध्रुपद के सम्बन्ध में यह निश्चित नहीं हो पाया है कि ध्रुपद का आविष्कार कब और किसने किया है। परन्तु कुछ विद्वानों का मानना है की ध्रुपद शैली का आविष्कार व विकास 15वीं शताब्दी के राजा मानसिंह तोमर ने किया था।

ध्रुपद में राग के शास्त्रोक्त नियमों का पालन करते हुए आलाप करना इस शैली में अनिवार्य माना जाता है इसमें आलाप करने का दो तरीके होते है। पहलागीत प्रारम्भ करने से पहले का आलाप तथा दुसरा गीत को आरम्भ कर गीत के शब्दों के साथ आलाप करना अर्थात ध्रुपद के चारों अंग स्थायी, अन्तरा, संचारी आभोग को गाने के बाद पदों के माध्यम से आलाप किया जाता है। ये आलाप बढ़त और उपज दोंनो अंगों से किया जाता है। यह बहुत ही गम्भीर प्रकृत्ति का गायन शैली है। अधिकांशतः ध्रुपद की रचना ब्रज भाषा में होती है। इसमें वीर एवं श्रृंगार रस की प्रधानता होती है(मिश्रा, 2006, पृ0 122)।

तानसेन ने ध्रुपद संगीत के साथ-साथ अनेक हिन्दुस्तानी वाद्यों जिसमें सरस्वती वीणा और रबाब (रूद्रविणा) इन दोंनों का आविष्कार उन्होंने ही किया एवंउनकी शिष्य परम्परा ने ध्रुपद गायन और वाद्य संगीत को सुरक्षित और जीवित रखा। तानसेन को ही सेनियाँ घराने का आदि पुरूष एवं जन्मदाता माना जाता है।

अबुल फजल ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ ‘अईने अकबरी’ में ध्रुपद गायकों एवं वादकों का भी उल्लेख किया है -

गायकों में तानसेन और इनके गुरू स्वामि हरिदास जी एवं तानसेन के वंशज तथा गोपाल नायक, बैजुबावरा एवं वादकों में रबाब के आविष्कारक कासिम उर्फ कोहबर, बीनकार साहब खाँ, कानून वादक मीर अब्दुल्ला, तम्बुरा वादक मुहम्मद अमीर इसके साथ-साथ बाँसुरी वादक दोस्त मुहम्मद मशहदी, शहनाई वादक-शाह मुहम्मद इत्यादि नाम उल्लेखनीय है।

इन विभिन्न वादकों के उल्लेख से पता चलता है कि ध्रुपद के साथ अन्य तत् वाद्यों के अतिरिक्त सुषिर वाद्य, बाँसुरी एवं शहनाई वाद्य का भी ध्रुपद में संगत के रूप में प्रयोग होता था।हिन्दुस्तानी संगीत के अर्न्तगत धुर्रुपद के साथ-साथ वीणा, रबाब, सुरसिंगार, सरोद सितार तथा सुषिर वाद्यों में बाँसुरी और शहनाई ऐसे वाद्यों की शैलियाँ भी उन्नतिशील एवं प्रगतिशील होती चली गई।

तानसेन सेनिया घराने की शिष्य परम्परा में ध्रुपद-गायक और सितारवादक दोनों हुए। बिलास खाँ के घराने के गायक घ्रुपद के साथ साथ वाद्यों में रबाब में कुशलता प्राप्त की थी तथा मिश्री सिंह के वंशज वाद्यों में वीणा और धुपद में निपुण थे। इस प्रकार तानसेन सेनिया घराने की विशेषता से पता चलता है की ध्रुपद का प्रभाव मध्यकाल में अनेक तत् और सुषिर वाद्यों पर पड़ा। विद्वानों के मतानुसार सितार में गत का विस्तार तथा आलाप के लिए धुरुपद की चार बानियों में से गोबरहार, डागुर तथा खण्डहार बानी का बहुत प्रभाव पड़ा। सितार वादन में जोड का भाग ध्रुपद के खण्डहार बानी का ही

अनुशरण प्रतीत होता है इस प्रकार से आज भी हमें बाँसुरी वादन में आलाप के बाद जोड़ का वादन होता है इसमें सितार का ही स्वरूप देखने को मिलता है। जोड़ का वादन एक निश्चित लय को रखकर तथा लड़ी अंग व तारपन की सहायता से स्वर विस्तार करते हैं(चौबे, 2014, पृ0 9-10)।

बाँसुरी वादन शैली में वादकों ने आलाप एवं जोड़ के बाद ध्रुपद के आधार पर ही विभिन्न गतों के निर्माण की शुरूआत की। आज जो भी वादक बाँसुरी वादन में गायकी एवं गतकारी अंग से वादन करते हैं, वह 18वीं शताब्दी के वीणा वादन का ही अनुसरण है। सितार के वादन शैली की बात करे तो यह वीणा और रबाब की वादन शैली का परित्याग है। वर्तमान समय में एक अच्छा वादक चाहे वो सुषिर वाद्य हो या तत्वाद्य उन सभी शैलियों का गुण अपने वादन में भरने का प्रयास करता है। जिससे श्रोता आनंदित हो और उसके वादन की प्रशंसा करें।

सितार के कई प्रकार की वादन क्रियाओं का विकास का श्रेय तानसेन के सेनीया घराने को जाता है। जैसे -आलाप, जोड़, झाला, ठोंकझाला, गत, लड़ी, तोड़ा, गुथॉव, लड़ गुँथाव, लाड़ लपेट, तार परन और कत्तर आदि क्रियाओं को सितार के सेनिया बाज की वादन शैली में प्रयोग किया जाता है और यही इस घराने के सितार वादन का अभिन्न अंग बन गए। इनमें से बहुत सारे वादन क्रियाओं का प्रयोग गतकारी अंग से वादन करने वाले बाँसुरी वादकों में भी देखी जाती है।

वाद्यों के वादन शैली को अवलोकन करे तो पता चलता है कि जिस तरह से ध्रुपदगायी जाती है। उसके अनेक स्वरूपों का झलक हमें सुनने को मिलता है। प्राचीन ध्रुपद शैली का प्रभाव अनेक संगीत वाद्यों पर पड़ा जिसके कारण आज भी बाँसुरी को ध्रुपद शैली से वादन करते समय अवनद्ध वाद्यों में पखावज की संगति की जाती है और इसके चार चरण इस प्रकार से होते हैं(चौधरी, 2006, पृ0 363, 411, 413)

आलाप

यह ध्रुपद शैली का प्रथम चरण है। इस शैली में गायक वर्ग गायन करते समय ईकार, ऊकार के उपयोग के लिए री, रू, तोम् आदि निरर्थक शब्दों का प्रयोग करते हैं जिससे यह ज्ञात होता है की ध्रुपद गायकी एक स्वर प्रधान गायकी है, इसी तरह तत् वाद्यों में वीणा,रबाब, सितार तथा सुषिर वाद्यों में बाँसुरी, शहनाई के वादन में स्वरों के माध्यम से मुक्त आलाप होता है तथा आलाप के स्वरूपों का भी चार भागों में निर्धारण किया गया है। राग के स्वरों को मध्य 'सा' से आरम्भ कर मन्द्र, मध्य और तार सप्तक तक क्रमशः राग के स्वरूपों को स्पष्ट करते हुए बिलम्बित लय में आलाप किया जाता है। आलाप के दूसरे भाग मध्यलय में तनाना, तोम् आदि शब्दों से जिस प्रकार बन्दिश में सम दिखलाया जाता है, गायक या वादक उसी प्रकार सम का आभास दिखलाते हुए तीसरे भाग दुरुतलय में गमकों का विशेष प्रयोग से आलाप की समाप्ति करता है।

बन्दिश

द्वितीय चरण में बन्दिश गाई जाती है, जिसमें स्थायी, अन्तरा, संचारी और आभोग ये चार भाग होते हैं। वर्तमान समय में कुछ ही ध्रुपदों में चार चरण मिलते हैं। मुख्यतः स्थायी और अन्तरा ये दो ही भाग गाये जाते हैं मध्ययुग में संक्षिप्तिकरण का दौर आरम्भ हो गया था और शब्दों की अपेक्षा स्वरों पर अधिक बल दिया जाने लगा था। इसलिए वर्तमान समय में आज भी तत् वाद्य एवं सुषिर वाद्य बाँसुरी, शहनाई आदि वाद्यों पर वादन के दौरान बन्दिश के चार भाग जिसमें स्थाई के दो लाइन तथा अन्तरे के दो लाइन का वादन होता है, परन्तु आज संक्षिप्तिकरण के दौर में वादक स्थाई की एक लाइन एवं अन्तरें की एक लाइन को स्वरों एवं लयों के माध्यम से विस्तार करता है।

अहोबल ने अपने ग्रंथ 'संगीत परिजात' में स्वरों की प्रधानता निम्नांकित श्लोक से दिया है -

''वर्णैरेतेषु स्वल्पत्वं स्वैरत्र समीरणा''

अतः इस श्लोक से हमें ज्ञात होता है कि ध्रुपद शैली में वर्ण यानी शब्द की अल्पत्वता और स्वरों का विस्तार अधिक होता है जैसा कि आज भी स्वर वाद्यों के वादन में पूर्णरूप से झलकता है।

लयकारी

ध्रुपद का यह तृतीय चरण है जिसमें दुगुन, तिगुन, चौगुन और आड़ आदि लयों में बंदिश के स्वरूप को बिना परिवर्तन किए गया जाता है इसी प्रकार सितार एवं बाँसुरी आदि वाद्यों का वादन करते समय बन्दिश के स्वरूपों को बिनाबदले उसमें विभिन्न प्रकार के लयकारी किया जाता है। लयकारी के लिए अत्यन्त, तीक्ष्ण बुद्धि और लय का पक्कापन होना अनिवार्य है।यदि श्रोता मर्मज्ञ हो तो इसका चित पर विशेष प्रभाव होता है और एक प्रकार की विचित्रता के कारण आनन्द उत्पन्न होता है(मिश्रा, 2005, पृ0 219-220)।

बोल-बाँट या उपज

कलाकार की बुद्धि जितनी तीव्र होती है उतनी ही अपने वादन में विभिन्न लयों के माध्यम से श्रोताओं के चित्त का रंजन कर सकता है(जायसवाल, 2013, पृ0 77-71)।

निष्कर्ष

वर्तमान समय में जो भी संगीत चाहे वो ख्याल गायकी हो या किसी वाद्य का वादन हो ये सभी वादन शैलियाँ मूलतः ध्रुपद गायकी का ही अनुसरण है जो वर्तमान समय में प्रचलित है। इस तरह से हम कह सकते हैं कि वीणा, सुरबहार, सितार, बाँसुरी, शहनाई आदि वाद्यों में आज भी ध्रुपद्र अंग का प्रभाव परिलक्षित होता है। तथा संगत के रूप में पखावज वाद्य की संगति होती है। जो आज भी बनारस के 'ध्रुपद मेंला' में अनेक वादकों के वादन का कार्यक्रम देखने व सुनने के समय मिलता है। जब बाँसुरी स्वतंत्र वाद्य के रूप में प्रतिष्ठत नहीं था उस समय मध्यकाल 13वीं शताब्दी तक मात्रा एक संगत वाद्य के रूप में इसका प्रयोग होता था(मिश्रा, 2005, पृ0 219-20)। मध्यकाल 15वीं शताब्दी में जब ध्रुपद का विकास हुआ तब ध्रुपद गायन के साथ संगत किया जाता रहा होगा। फिर धीरे-धीरे ध्रुपद गायन में संगत होने के कारण इस शैली का प्रारूप अन्य संगत वाद्यों ने ग्रहण किया। जिससे गायकी की प्रत्येक चरण वाद्यों पर उतरता-चलता गया। इस तरह हम यह कह सकते है कि वाद्यों में गायकी एवं तंत्रकारी अंगों का विकास ध्रुपद गायन शैली से ही हुआ है।

सन्दर्भ सूची

1. चौबे, सुशील कुमार (2014), गीत के घरानों की चर्चा, बेकराँ आलमी फाउण्डेशन, लखनऊ, चतुर्थ संस्करण, पृ0सं0 9, 10।
2. जायसवाल, राधेश्याम (1972)सौरभ, विश्वविद्यालय रेफरीड शोध पत्रिका, इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, प्रथम अंक, पृ0सं0 05।
3. मिश्र, लालमणि (2005). भारतीय संगीत वाद्य, भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली, पृ0सं0 219, 220।
4. चौधरी, सुभद्रा (2006). शारंगदेव कृत संगीतरत्नाकर, राधा पब्लिकेशन्स अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली, पृ0सं0363, 411, 413।

5. जायसवाल, राधेश्याम (2013). भारतीय संगीत के सुषिर वाद्यों का इतिहास. कनिष्का पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, दरियागंज, नई दिल्ली, पृ0सं0 71, 77।

6. बृहस्पति, आचार्य (1986). नाट्यशास्त्र 28वाँ व 30वाँ अध्याय, बृहस्पति पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, पृ0सं0 211।

7 भार्गव, अंजना (2009), भारतीय संगीत शास्त्रों में वाद्यों का चिंतन,कनिष्का पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, दरियागंज, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करणए पृ0सं0 106.107।